



ISSN: 2456-4427

Impact Factor: RJIF: 5.64

Jyotish 2026; 11(7): 45-48

© 2026 Jyotish

www.jyotishajournal.com

Received: 02-07-2026

Accepted: 25-07-2026

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
संस्कृत-ज्योतिष विभाग, कुमार भास्कर
वर्मा संस्कृत एवं पुरातन अध्ययन
विश्वविद्यालय, नमाटि, नलबाड़ी, असम,
भारत

Correspondence

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
संस्कृत-ज्योतिष विभाग, कुमार भास्कर
वर्मा संस्कृत एवं पुरातन अध्ययन
विश्वविद्यालय, नमाटि, नलबाड़ी, असम,
भारत

ग्रह मीमांसा

नन्दन कुमार तिवारी

DOI: <https://www.doi.org/10.22271/24564427.2026.v11.i7a.346>

सारांश

जब हम आकाश की ओर देखते हैं तो हमें अनेकों पिण्ड दिखाई देते हैं। वे सभी एक जैसे होते हैं। उनमें नम्र चक्षुओं से अन्तर पाना सम्भव नहीं होता है। किन्तु ध्यान से देखने से पता चलता है कि उनमें से कुछ टिमटिमा रहे हैं और कुछ में कोई अन्तर देखने को नहीं मिलता है। जो टिमटिमा रहे हैं उनको हम 'तारों' कहते हैं। तारे जलते हुए आग के गोले होते हैं। आग की लपटों के कारण वे टिमटिमाते नजर आते हैं। आग की ज्वाला को दूर से देखने पर उसके रंग बदले हुए नजर आते हैं। तारों हजारों-करोड़ों मील दूर में स्थित होने के कारण केवल टिमटिमाते हुए नजर आते हैं। अर्थात् आकाश में दो प्रकार के प्रकाश पिण्ड हैं जिनमें कुछ स्वयं आग की लपटें बिछा रहे हैं तो कुछ सूर्य के प्रकाश के कारण प्रकाशित नजर आते हैं। इनमें से एक तारा और दूसरा ग्रह है। ज्योतिषशास्त्र में कुल ग्रहों की संख्या नौ बतलायी गयी है। ग्रह किसे कहते हैं? उनकी संख्या कितनी है? वे भ्रमण कहाँ करते हैं? उनकी वास्तविक स्थिति क्या है? ग्रहों की कितने प्रकार की गति होती है? ग्रहों का स्वरूप कैसा होता है? आदि इत्यादि इन सभी विषयों का उल्लेख ज्योतिषशास्त्रानुसार प्रस्तुत शोध आलेख में किया गया है।

कूटशब्द : ग्रह, आकाश, तारा, ग्रहण, आकाशीय पिण्ड, नक्षत्र, वेध, खगोल, भूकेन्द्र

प्रस्तावना

ग्रह किसे कहते हैं?

सामान्यतया आकाश में स्वयं प्रकाश से प्रकाशित पिण्ड 'तारा' है तथा जो सूर्य के प्रकाश के कारण प्रकाशित होता है वह 'ग्रह' कहलाता है। गृह्णातीति ग्रहः। संस्कृत में ग्रहण करने के अर्थ में जो क्रिया वाचक शब्द प्रयुक्त होता है वह है - ग्रह उपादाने। पूर्व उक्ति में कहा है - गृह्णातीति ग्रहः; अर्थात् जो ग्रहण करता है वह 'ग्रह' होता है। इससे स्पष्ट होता है कि आकाश में कुछ पिण्ड कुछ पिण्डों का ग्रहण करते हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक एवं शनि ये सात आकाशीय पिण्ड दूसरे पिण्डों का ग्रहण करते हुए दिखाई देते हैं।

आकाश में दो प्रकार के खगोलीय पिण्ड देखने को मिलते हैं। उनमें एक वर्ग के पिण्ड तो घड़ी में लिखे हुए अंकों के जैसे एक ही स्थान में रहते हैं। दूसरे किस्म के पिण्ड उन स्थिर पिण्डों को एक-एक करके पार करते हुए चलते हैं। अर्थात् वे उन पिण्डों को एक-एक करके ग्रहण करते हैं। जैसे घड़ी में सूइयाँ करती हैं। इन दो प्रकार के पिण्डों में से जो स्थिर है अर्थात् चलते नहीं हैं उनका नाम है- नक्षत्र। इसीलिए नक्षत्र के लिए कहा जाता है कि न क्षरति चलतीति नक्षत्रम्। अर्थात् जो चलता नहीं है वह नक्षत्र है, और उन नहीं चलने वाले नक्षत्रों का जो ग्रहण करते हैं वे 'ग्रह' हैं।

ग्रहों की संख्या

ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों की कुल नौ (09) संख्या बतलायी गयी है। वे ग्रह हैं - सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक, शनि, राहु एवं केतु। यथा वृहत्पराशरहोराशास्त्र में लिखा है-

अथ खेटा रविश्चन्द्रो मंगलश्च बुधस्तथा।

गुरुः शुकः शनी राहुः केतुश्चैते यथाक्रमम्॥¹

इन नवग्रहों में भी राहु एवं केतु को छोड़कर प्रधान सात ग्रह कहे गये हैं। राहु एवं केतु को तमोग्रह (छायाग्रह) बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त सूर्य एवं चन्द्र को सर्वप्रधान ग्रह बतलाया गया है अन्य भौमादि पाँच ग्रहों को 'ताराग्रह' से सम्बोधित किया जाता है।

ज्योतिषशास्त्रान्तर्गत ग्रह ज्ञान के सन्दर्भ में उत्पन्न होने वाली शंकायें

- ग्रह राशि चक्र में भ्रमण कर रहे हैं तो अपने अपने विमण्डलों में भी कैसे भ्रमण कर सकते हैं?
- राशि चक्र का केन्द्र भूकेन्द्र में है तो ग्रहकक्षाओं का केन्द्र भूकेन्द्र में क्यों (कैसे) नहीं है?
- मध्यम ग्रह किसे कहते हैं?
- स्पष्ट ग्रह किसको कहते हैं?
- केन्द्र एक न होने से फल नामक अन्तर कैसे उत्पन्न होता है?

उपर्युक्त इन शंकाओं का समाधान क्रमशः इस आलेख में करने का प्रयास किया जा रहा है।

ग्रह कहाँ चलते हैं?

वास्तविक ग्रह स्व-स्व कक्षाओं में परिभ्रमण करते हैं। अर्थात् ग्रह वास्तव में अपनी-अपनी नियमित कक्षाओं में भ्रमण करते हैं। वे पृथ्वी से समान दूरी में नहीं हैं। उनमें कुछ पृथ्वी के समीप में है तो कुछ पृथ्वी से दूर में। वे आपस में भी कहीं नहीं मिलते हैं। वे एक दूसरे का ग्रहण वास्तव में नहीं कर सकते हैं।

राशि चक्र में कौन भ्रमण करते हैं?

राशि चक्र एक अद्भुत वैज्ञानिक कल्पना है। वह कल्पना इसलिए है कि राशि चक्र नामक कोई चक्र नहीं है। यह कल्पना मात्र है। आकाश में वास्तव में स्थित तारासमूहों का भू सापेक्ष जो वर्तुलाकार स्थिति है उसी का राशि चक्र के रूप में ग्रहण करने के कारण इसे वैज्ञानिक कल्पना कह सकते हैं। राशियों में स्थित तारे भी पृथ्वी से समान दूरी में नहीं हैं। वे आपस में भी क्रोशों अन्तराल में हैं। किन्तु वे सभी पृथ्वी के चारों ओर समान दूरी में नजर आते हैं। इसका कारण है मनुष्य की दृष्टि सीमित होना। (अर्थात् मनुष्य के नेत्रों के द्वारा देखने की सीमा चारों ओर समान होना)।

तारे ग्रहों से कई गुणा दूरी में स्थित हैं। अतः ग्रह अपने अपने स्थानों में जब चलते हैं तो वे पृथ्वी से किसी न किसी तारा समूह में ही चिह्नित होते हैं। अर्थात् जो ग्रह जिस तारा समूह में चिह्नित हुआ वही उसका स्थान है। अर्थात् हम वास्तव में ग्रह जहा घूम रहा है उसको स्वीकार करके ग्रह की तारा समूह में जो स्थिति नजर आ रही है उसका ग्रहण करते हैं।

इस प्रकार से स्वीकारने का भी वैज्ञानिक कारण है। ग्रह की वास्तविक स्थिति को न तो हम नाप सकते हैं न हमें उस स्थान की कोई आवश्यकता है। पृथ्वी में स्थित मानव अपने स्थान की दृष्टिकोण से आसमान को देखते हुये समय का साधन करना चाहता है। इस चाहत के अन्तर्गत उसने आसमान को अपनी घड़ी मान ली और घड़ी की सीमा या आकार को ही राशिचक्र के रूप में स्वीकार काया है। उस राशिचक्र में स्थित तारासमूहों से उत्पन्न राशियाँ ही काल के विभिन्न अंग हैं। उन काल विभागों की कलना (गणना) करने हेतु उपयोग में आने वाले ग्रह नामक सूझियाँ हैं। इस घड़ी की विशेषता यह है कि मानव मात्र इसका प्रयोग कर सकता है। इनके नियमों में मानव हस्तक्षेप नहीं कर सकता और न ही इनको अपने मन मानी ढंग से चलाने के लिए मजबूर कर सकता। अर्थात् प्रकृति के द्वारा प्रदत्त एक अनौखी सहज घड़ी राशिचक्र और ग्रह हैं।

अर्थात् ज्योतिष शास्त्र में जिनको ग्रह कहते हैं वास्तव में वे राशिचक्रस्थ ग्रहों के स्थान हैं। इन्हीं स्थानों की कोणीय स्थिति को मानव नापता है। इनको नापने के लिए उस चक्र में मानव जिस बिन्दु को चिह्नित किया है वह अश्विनी का प्रारम्भ या रेवती का अन्त बिन्दु है। इस स्थान की वर्तमान इकाई में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

ग्रह कक्षा का केन्द्र

चारों ओर पृथ्वी से बराबर की दूरी में मानव नेत्रों की दृष्टि क्षमता के आधार पर राशियाँ दिखाई देती हैं। मानव की दृष्टि चारों ओर से समान होने के कारण उस राशिचक्र का केन्द्र भूकेन्द्र में ही है। अर्थात् चारों ओर वर्तुलाकार कक्षा में दिखने वाले राशि चक्र के बीचों बीच में पृथ्वी है। अतः पृथ्वी पर स्थित लोगों को वास्तविक ग्रह न दिखकर इन राशियों में मात्र इनका स्थान दिखता है।

ग्रह भ्रमण करते करते कभी पृथ्वी के समीप आ जाते हैं तथा कभी - कभी पृथ्वी से दूर हो जाते हैं। यदि ग्रहकक्षाओं का केन्द्र भूकेन्द्र में होता तो यह कभी सम्भव नहीं हो सकता। गणित के नियम के आधार पर केन्द्र उसे कहते हैं जो वृत्त के या कक्षा के प्रत्येक बिन्दु से समान दूरी में स्थित हो। वृत्त के अन्दर इस प्रकार का एक ही बिन्दु हो सकता है। यदि ग्रह कक्षा का केन्द्र भूकेन्द्र में रहता तो ग्रह प्रत्येक स्थान में पृथ्वी से समान दूरी में भ्रमण करता। किन्तु वास्तविक स्थिति इस प्रकार से भिन्न है।

सिद्धान्त ज्योतिष में कहा जाता है कि ग्रह अपने नीच बिन्दु की ओर जब अग्रसर होता है तो वह तेजी से चलता है। ग्रहकक्षा में भूकेन्द्र से समीपतम स्थान नीच है। इसी प्रकार ग्रह की कक्षा में जो स्थान पृथ्वी से दूरतम रहता है उसे उच्च कहते हैं।

अर्थात् ग्रह पृथ्वी के चारों ओर वर्तुलाकार कक्षाओं में भ्रमण नहीं करते हैं। वे अपने अपने कक्षाओं में भ्रमण करते हैं तथा उन कक्षाओं का केन्द्र भूकेन्द्र से हटकर है।

मध्यम ग्रह किसे कहते हैं?

ग्रह स्थान और वास्तविक ग्रह दोनों यदि एक ही होते तो मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह नामक भेद देखने को नहीं मिलता। किन्तु ग्रहों के भ्रमण मार्ग भिन्न भिन्न होने के कारण, पृथिवी से इन कक्षाओं की दूरी समान न होने के कारण, कक्षाओं के दक्षिणोत्तरान्तर में भी अधिक मात्रा में व्यत्यास होने के कारण ग्रहों को ग्रहस्थान के रूप में देखने का अवसर नहीं मिलता है। ग्रहों के आधार पर काल का साधन करना है। इसके लिए नित्य गतिशील ग्रह मात्र सहयोग नहीं कर सकते हैं। उनके सापेक्ष स्थान का ज्ञान उनकी गणना हेतु अत्यन्त आवश्यक होता है। इसी गणना की सुलभता के लिए की गई व्यवस्था ही मध्यम ग्रह है।

मध्यम ग्रह आसमान में देखने से नहीं मिलता है। अर्थात् वह आसमान में रहता ही नहीं है। ग्रहों के भगणों के आधार पर प्रतिदिन की ग्रह की दिन की औसतन गति निकाल कर उस औसतन गति के आधार पर निकले औसतन ग्रह को ही मध्यम ग्रह कहते हैं। विलक्षण गति युक्त ग्रह की आसन्न स्थिति को प्राप्त करने के लिए किए जाने वाला प्रयास ही मध्यम ग्रह है। मध्यम ग्रह साधन करने का मूल आधार ही भगण है।

स्पष्ट ग्रह किसे कहते हैं?

गणित के आधार पर प्राप्त ग्रह को मध्यम ग्रह कहते हैं। जो वास्तविक ग्रह से आगे या पीछे रहता है। कुछ ही सन्दर्भों में वह वास्तविक ग्रह के समान प्राप्त होता है। गणितागत ग्रह से वास्तविक ग्रह अलग होने के कारण गणित से ग्रह जिस स्थान में प्राप्त हुआ उस स्थान में आसमान में देखने पर नहीं मिलता है। अर्थात् आसमान में दिखाई देने वाला ग्रह मध्यम ग्रह से आगे या पीछे रहता है। वास्तविक ग्रह को आसमान में यन्त्रादि की सहायता से देखने पर जहां वह दिखता है उसी स्थान को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते हैं तथा उस स्थान में दिखने वाला ग्रह ही स्पष्ट ग्रह कहलाता है। ध्यातव्य विषय यह है कि पृथ्वी के परिप्रेक्ष्य में वास्तविक ग्रह राशि चक्र के जिस स्थान में देखने को मिल रहा है उसे स्पष्ट ग्रह कहते हैं।

फल किसे कहते हैं?

गणित से साधन करने पर प्राप्त हुआ मध्यम ग्रह तथा यन्त्रादि की सहायता से आसमान में देखने पर दिखाई देने वाले स्पष्ट ग्रह के बीच का जो अन्तर होता है उसे फल कहते हैं। अर्थात् जितने अन्तर से स्पष्टग्रह मध्यमग्रह से अन्तरित है उसी अन्तर की फल संज्ञा है।

ग्रह राशिचक्र में भ्रमण करते हैं। ग्रह अपने अपने विमण्डलों में भ्रमण करते हैं। राशिचक्र का केन्द्र भूकेन्द्र में है किन्तु ग्रहकक्षा अथवा ग्रहविमण्डलों का केन्द्र भूकेन्द्र में नहीं है। ग्रहकक्षाओं का केन्द्र भूकेन्द्र में न होने के कारण मध्यम ग्रह तथा स्पष्ट ग्रह में 'फल' नामक अन्तर उत्पन्न होता है। उपरिलिखित ये चार वाक्य आपस में एक दूसरे का विरोध करते हैं। तथा इनको प्रथम दृष्टि से पढ़ने पर अनेक प्रकार की शंकाओं का जन्म होता है।

ग्रहों की गति कहाँ देखी जाती है?

पृथ्वी के चारों ओर मानव समान दृष्टि से देख सकता है। अतः मानव को चारों ओर सभी आकाशीय पिण्ड समान दूरी में विचरण करते हुए दिखाई देते हैं। इस स्थिति को भू-सापेक्ष स्थिति कहते हैं।

भूसापेक्ष सभी ग्रह पृथ्वी के चारों ओर पूर्व की गति से चलते हैं। अर्थात् ग्रह पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर एक पथ में चलते हुए दिखाई देते हैं। उसी पथ को 'राशिचक्र' कहते हैं। उसी पथ में दर्शन देने वाले अनेक तारों से उत्पन्न विभिन्न आकाशों को हमने नक्षत्र संज्ञा दी है। उन नक्षत्रों से उत्पन्न विभिन्न समुदायों को राशि संज्ञा दी गयी है। ग्रह, उन राशियों को पार करते हुए अथवा ग्रहण करते हुए आगे बढ़ते हैं। संक्षिप्त में यदि कहा जाए तो पृथ्वी के चारों ओर जिस वृत्ताकार कक्षा में राशियाँ स्थित हैं अथवा पृथ्वी से दृश्य है उसी राशिचक्र संज्ञक सूर्यभ्रमण मार्ग में ग्रह चलते हुए दिखाई देते हैं। अर्थात् ग्रह गति भूमि की दृष्टि से राशिचक्र में नापी जाती है।

ग्रहों का भ्रमण कैसे होता है?

इस विश्व में कोई भी पिण्ड स्थिर नहीं है। सम्पूर्ण विश्व पश्चिम की ओर चल रहा है। विश्व के साथ विश्व के अंग भगोल, भूचक्र या राशिचक्र, उसमें स्थित ग्रह आदि सभी अत्यन्त वेग से पश्चिम की ओर भ्रमण कर रहे हैं। उनके भ्रमण का मुख्य कारण शास्त्र में 'प्रवह' नामक वायु बताया गया है। उस प्रवह नामक वायु के अत्यन्त वेग से प्रेरित सभी आकाशीय पिण्ड पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा की ओर अनवरत चल रहे हैं तथा वे सभी पृथ्वी की परिक्रमा लगभग 60 घटी के समय में कर लेते हैं। यह 60 घटी आज के चौबीस घण्टे के बराबर है। नक्षत्रों के साथ-साथ पश्चिम दिशा की ओर चलने वाले ग्रह अल्पगति से पूर्व की ओर भी खिसकते हैं। इस बात को सूर्यसिद्धान्त में सूर्याश पुरुष ने इस प्रकार कहा है -

पश्चाद् व्रजन्तोऽतिजवान्नक्षत्रैस्सततं ग्रहाः।

जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गाः॥²

अर्थात् अपने-अपने मार्गों में चलने वाले ग्रह, नक्षत्रों के साथ अनवरत अतिवेग से पश्चिम की ओर चलते हुए जीता हुआ जैसे समान ही लम्बित होते हैं या खिसकते हैं।

इस प्रकार प्रवह नामक वायु के कारण अत्यन्त वेग या गति से घूमने वाले ब्रह्माण्ड के साथ-साथ राशिचक्र और उसमें स्थित तारों, राशियाँ आदि सभी घूम लेते हैं। किन्तु इस प्रकार के घूमने व भ्रमण में उनके स्थानों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अर्थात् वे जहाँ हैं वहीं पर रहते हैं। किन्तु उनके साथ-साथ चलने वाले ग्रह उस दिशा की विरुद्ध दिशा में भी खिसक कर राशिचक्र में अपने-अपने स्थान में परिवर्तन कर देते हैं। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती है।

ग्रहगति को कौन प्रभावित करते हैं?

ग्रहों के गति के प्रमुख रूप से तीन हेतु(कारण) हैं - शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात। जैसा कि सूर्याश पुरुष ने 'सूर्यसिद्धान्त' में भी कहा है -

अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्त्यो भगणाश्रिताः।

शीघ्रमन्दोच्चपाताख्याः ग्रहाणां गतिहेतवः॥³

भगण राशिचक्र को कहा जाता है। उस राशि चक्र में शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात नामक तीन स्थान हैं। वे सभी ग्रहों के लिए अलग-अलग हैं। उन स्थानों का कोई स्वरूप नहीं है इसलिए उनको अदृश्य रूप कहते हैं। ये तीनों ग्रहों के गति के हेतु अर्थात् कारक हैं।

उच्च - जिस बिन्दु को प्राप्त कर ग्रह भूकेन्द्र से अत्यन्त दूर होता है उस बिन्दु का नाम 'उच्च' है। अर्थात् ग्रह भ्रमण मार्ग में या ग्रहकक्षा में भूकेन्द्र से दूरतम स्थान को उच्च कहते हैं। यह उच्च भी दो प्रकार का होता है - मन्दोच्च एवं शीघ्रोच्च।

मन्दोच्च - ग्रह की गति में अन्तर उत्पन्न करने वाला जो प्रथम कारक पाया गया था वह ग्रह में मन्द मन्द या थोड़ा-थोड़ा अन्तर उत्पन्न करता है। उस मन्द अन्तर को उत्पन्न करने वाला प्रधान कारक व स्थान होने के कारण इस उच्च को मन्दोच्च कहते हैं।

शीघ्रोच्च - मन्दोच्च से ग्रह में उत्पन्न होने वाले प्रभाव को पहचानने के बाद पता चला कि अभी भी गणितागत और दृश्य ग्रह एक स्थान में प्राप्त नहीं हो रहे हैं। तब पता चला कि मन्दोच्च से भी एक और दूरतर बिन्दु ग्रह के मार्ग में उपस्थित है। यह बिन्दु ग्रह की गति में मन्दोच्च की अपेक्षा अधिक अन्तर को उत्पन्न करता है। अन्तर भी त्वरित गति से उत्पन्न होता है। इसी लक्षण के कारण इसे 'शीघ्रोच्च' की संज्ञा दी गयी है।

पात - ग्रहों के विमण्डल और क्रान्ति वृत्त का जहाँ मिलन होता है, उसे 'पात' कहते हैं। इस मिलन बिन्दु को प्राप्त करने के बाद ग्रह क्रान्ति वृत्त से या तो दक्षिण की ओर चले जाते हैं या उत्तर की ओर। उत्तर तथा दक्षिण की ओर चलने से ग्रहों में जो दक्षिणोत्तरान्तर उत्पन्न होता है उसे विक्षेप कहते हैं। विक्षेप का मूल कारक पात ही होता है।

ग्रहों की गतियाँ कितने प्रकार की होती हैं?

ग्रहों के उपर उत्पन्न विभिन्न प्रकार के आकर्षण तथा विकर्षणों के कारण ग्रहों में आठ प्रकार की गति उत्पन्न होती है-

वक्रातिवक्रा विकला मन्दा मन्दतरा समा।

तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः॥⁴

ग्रहों की आठ प्रकार की गतियाँ होती हैं - वक्रा, अतिवक्रा, विकला, मन्दा, मन्दतरा, समा, शीघ्रा, शीघ्रतरा।

ग्रहों के स्वरूप -

भानुः श्यामललोहितद्युतितनुश्चन्द्रः सितांगो युवा।

दूर्वाश्यामलकान्तिरिन्दुतनयः संरक्तगौरः कुजः॥

मन्त्री गौरकलेवरः सिततनुः शुक्रोऽसितांगः शनिः।

चानीलाकृतिदेहवानहिपतिः केतुर्विचित्रद्युतिः॥⁵

अर्थात् सूर्य रक्ताभ श्यामल वर्ण, चन्द्रमा गौरवर्ण, बुध दूर्वा के समान हरित श्यामल वर्ण, मंगल रक्ताभ गौर वर्ण, वृहस्पति गौर वर्ण, शुक्र श्वेत गौर, शनि कृष्ण वर्ण, राहु नीलवर्ण तथा केतु का विचित्र (मिश्रित) वर्ण है।

ग्रहों के आकार

**दिवाकरज्ञौ विहगस्वरूपौ सरीसृपाकारयुतः शशांकः।
पुरन्दराचार्यसितौ द्विपादौ चतुष्पदौ भानुसुतक्षमाजौ॥⁶**

अर्थात् सूर्य और बुध का स्वरूप पक्षी के समान, चन्द्रमा का स्वरूप सरीसृप रेंगने वाले कीट के समान, वृहस्पति और शुक्र का स्वरूप द्विपद के समान तथा शनि और मंगल की आकृति चौपाये के समान हैं।

ग्रहों की अवस्था

**बालो धराजः शशिजः कुमारकस्त्रिंशदुरुः षोडशवत्सरः सितः।
पञ्चाशदको विधुरब्दसप्ततिः शताब्दसंख्याः शनिराहुकेतवः॥⁷**

इस श्लोक के अनुसार मंगल बालक है, बुध कुमार, वृहस्पति की 30 वर्ष, शुक्र की 16 वर्ष, सूर्य की 50 वर्ष, 70 वर्ष चन्द्रमा की तथा शनि, राहु और केतु की वय 100 वर्ष है।

ग्रहों के वास स्थान

**देवतोयतटवह्निविहाराः कोशगेहशयनोत्करदेशाः।
भानुपूर्वनिलयाः परिकल्प्या वेश्मकोणनिलयावहिकेतू॥⁸**

अर्थात् देवालय, जलाशय, अग्निस्थान, विहारस्थल, कोशागार, शयनकक्ष और उत्करदेश क्रमशः सूर्यादि ग्रहों के वास स्थान हैं। वेश्मकोण अर्थात् घर का कोना और निलय मतलब गोपनीय स्थान क्रमशः राहु और केतु के हैं। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों के बारे में अनेकों तथ्य प्राप्त होते हैं। 'ग्रहाधीनं जगत् सर्वं ग्रहाधीनं तु देवताः' सूक्ति के आधार पर भी यह समस्त संसार ग्रहों के अधीन माने जाते हैं और देवता भी ग्रहाधीन कहे गए हैं। इसलिए ग्रहों की महत्ता सर्वोपरि है।

सन्दर्भ सूची

1. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – ग्रहगुणस्वरूपाध्यायः, श्लोक संख्या-11, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
2. सूर्यसिद्धान्त – मध्यमाधिकार, श्लोक संख्या- 25,26 टीकाकार – कपिलेश्वर शास्त्री – चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
3. सूर्यसिद्धान्त – स्पष्टाधिकार, श्लोक संख्या-1-2, टीकाकार – आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय – चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
4. सूर्यसिद्धान्त – स्पष्टाधिकार, श्लोक संख्या- 12, टीका – आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा प्रकाशन।
5. जातकपारिजात – ग्रहनामरूपगुणभेदाध्यायः, श्लोक संख्या- 7, लेखक – वैद्यनाथ, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
6. जातकपारिजात – ग्रहनामरूपगुणभेदाध्यायः, श्लोक संख्या- 12, लेखक – वैद्यनाथ, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
7. जातकपारिजात – ग्रहनामरूपगुणभेदाध्यायः, श्लोक संख्या- 14, लेखक – वैद्यनाथ, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।